एम0ए0 (पूर्वार्द्ध) संस्कृत

चतुर्थ प्रश्नपत्र–दर्शन

इकाई–5 नास्तिक दर्शन

(जैन, बौद्ध और चार्वाक दर्शन)

इकाई की रूपरेखा :–

(5.0) उद्देश्य :–

भारतीय दर्शनों की नास्तिक वर्ग की शाखाओं में जैन, बौद्ध और चार्वाक दर्शन की गणना की जाती है। इस इकाई का उद्देश्य नास्तिकों की चिन्तन धारा से परिचित कराना है। इसके अध्ययन से आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

- नास्तिकों की सोच की दिशाएँ जान सकें।
- नास्तिकों की चिन्तन सीमाएँ जान सकें।
- भौतिकवादी विचारधारा से परिचित हो सकें।
- ईश्वर, वेद आदि को न मानने के कारण व इसके लिए दिए गए उनके तर्को की सार्थकता व निःसारता को भली–भाँति जान सकें।
- नास्तिक दर्शनों द्वारा स्थापित स्याद्वाद तथा क्षणभंगवाद जैसे सिद्धान्तों से परिचित हो सकें।

(5.1) प्रस्तावना :–

सामान्यतया भारतीय दर्शनों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है–

क) आस्तिक दर्शन **ख)** नास्तिक दर्शन

चतुर्थ प्रश्न पत्र की प्रारम्भिक इकाइयों (1 से 4 तक) में आस्तिक दर्शनों की विवेचना करने के उपरान्त अन्तिम इस पाँचवी इकाई में नास्तिक दर्शनों से अवगत कराया जा रहा है। नास्तिक दर्शन वेदों पर न तो आधारित हैं और न ही उन्हें प्रमाण मानते हैं। कारण, ये वेदों की प्रामाणिकता पर विश्वास ही नहीं करते हैं। चार्वाक दार्शनिकों ने तो वेदों की खुलेआम निन्दा की है। उनके अनुसार वेदों में झूठ और

पुनरुक्तियाँ भरी पड़ी हैं और वेद के रचयिता भाँड़, धूर्त (ठग) और राक्षस हैं। यही कारण है कि चार्वाक दर्शन घोर नास्तिकता की श्रेणी में आता है। चार्वाक की तुलना में जैन और बौद्ध सामान्य नास्तिक माने जाते हैं। जैन वेदों के स्थान पर तीर्थंकरों के शब्दों ने विश्वास करते हैं। बौद्धों ने भी वेदों पर अन्धविश्वास की कटु आलोचना की है; किन्तु ये दोनों दर्शन चार्वाकों जैसे वेद निन्दक नहीं है। वस्तुतः ये दोनों दर्शन आस्तिक दर्शनों के अत्यधिक निकट हैं।

(5.2) इकाई के शीर्षक का अर्थ :–

नास्ति परलोकः तत्साक्षीश्वरो वा इति मतिरस्य–ठक् अर्थात् अनीश्वरवादी, अविश्वासी जो वेदों की प्रामाणिकता, पुनर्जन्म और परमात्मा या विश्व के विधाता के अस्तित्त्व में विश्वास नहीं रखता है, उसे नास्तिक कहते हैं। ऐसे नास्तिकों के द्वारा प्रतिपादित दर्शन नास्तिक दर्शन कहे जाते हैं। इस प्रकार नास्तिक शब्द के तीन अर्थ स्पष्ट होते हैं –

(क) जो किसी भी वस्तु की सत्ता में विश्वास न करें।

(ख) जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास न करें।

(ग) जो वेदों की सत्ता में विश्वास न करें।

नास्तिक दर्शन अनार्य दर्शन के रूप में जाने जाते हैं। इनमें जैन, बौद्ध तथा चार्वाक दर्शन प्रमुख है। यहाँ इन्हीं जैन, बौद्ध तथा चार्वाक दर्शन का पाठ्यक्रम संक्षेप में प्रस्तुत है–

(5.3) पाठ्यक्रम :–

(5.3.1) जैन दर्शन :–

सत्य का अनुसंधान करने वाले जैन (अर्हत्) शब्द की व्युत्पत्ति 'जिन' से मानी गई है, जिसका अर्थ होता है–विजेता अर्थात् वह व्यक्ति जिसने इच्छाओं (कामनाओं) एवं मन पर विजय प्राप्त करके हमेशा के लिए संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर ली है। इन्हीं जिनो के उपदेशों को मानने वाले जैन तथा उनके साम्प्रदायिक सिद्धान्त जैन दर्शन के रूप में प्रख्यात हुए। ऐतिहासिक दृष्टि से नास्तिक दर्शनों में जैन सम्प्रदाय का प्रथम स्थान है। जैन दर्शन 'आर्हत दर्शन' के नाम से भी जाना जाता है। इनके सम्प्रदाय में चौबीस तीर्थंकर (महापुरूष, जैनों के ईश्वर) हुए जिनमें प्रथम ऋषभदेव तथा अन्तिम महावीर (वर्धमान) हुए। इनके कुछ तीर्थकरों के नाम ऋग्वेद में भी मिलते हैं, जिससे इनकी प्राचीनता प्रमाणित होती है। संक्षेप में इनके सिद्धान्त इस प्रकार हैं–

द्रव्य :– द्रव्य वह है, जिसमें गुण और पर्याय हो–'**गुणपर्यायवद् द्रव्यम्**।' गुण स्वरूप धर्म है और पर्याय आगन्तुक धर्म। इन धर्मों के दो भेद हैं– **(क)** भावात्मक **(ख)** अभावात्मक। स्वरूपधर्मों के बिना द्रव्य का अस्तित्त्व सम्भव नहीं। यह जगत् द्रव्यों से बना है। द्रव्य सत् हैं; क्योंकि उसमें सत्ता के तीनों लक्षण उत्पत्ति, व्यय (क्षय) और नित्यता मौजूद है। द्रव्य के दो रूप हैं– अस्तिकाय और अनस्तिकाय। अनस्तिकाय के अमूर्त होने से इसमें केवल काल की ही गणना होती है, जबकि अस्तिकाय में दो प्रकार के द्रव्य हैं– **(क)** जीव तथा **(ख)** अजीव। चेतन द्रव्य जीव अथवा आत्मा है। सांसारिक दशा में यही आत्मा जीव कहलाती है। जीव में प्राण तथा शारीरिक, मानसिक और ऐन्द्रिक शक्ति है, जिसमें कार्य के

प्रभाव से औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदायिक तथा पारिमाणिक—ये पाँच भाव प्राण से संयुक्त, रहते हैं। द्रव्य के रूप बदलने पर यही 'भावदशापन्न प्राण' पुद्गल (Matter) कहलाता है। इस प्रकार पुद्गल युक्त जीव ही संसारी कहा जाता है।

जैन दर्शनानुसार जीव नित्य एवं स्वयंप्रकाश है। 'अविद्या' के कारण वह बन्धन में बँधता है। इस प्रकार जीव के दो भेद हैं—बद्ध एवं मुक्त। बद्ध के पुनः दो भेद स्थावर और जंगम हैं, जिनमें जंगम—पृथ्वीकाय, अपकाय, वायुकाय तथा तेजकाय वाले हैं। अस्तिकाय द्रव्य का दूसरा तत्त्व 'अजीव' है, जिसके पाँच भेद हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल।

कर्म का सिद्धान्त :— जैनियों के अनुसार कर्म पौद्गलिक (शारीरिक) अर्थात् धूल के कण के समान जड़ पदार्थ हैं। ये इच्छा, द्वेष और भ्रम से प्रेरित मन, शरीर और वाक् की क्रियाओं तथा वासनाओं से पैदा होते हैं। कर्म के मुख्य रूप से दो भेद हैं—

1. घातीय अथवा नाशवान् तथा
2. अघातीय जो कि नाशवान् नहीं हैं।

इनमें से घातीय कर्म के चार भेद हैं— (अ) ज्ञानावरणीय, (ब) दर्शनावरणीय (स) अन्तराय (प्रगति में बाधक) और (द) मोहनीय। इसी प्रकार अघातीय कर्म के भी चार भेद हैं— (अ) आयुष कर्म (ब) नाम कर्म (स) गोत्र कर्म और (द) वेदनीय कर्म। ये ही आठ तरह के कर्म बन्धन का कारण हैं।

बन्ध :— जीव के बन्धन का मूल कारण दूषित मनोभाव हैं। कषायों के कारण जीव के पुद्गल (शरीर) से आक्रान्त हो जाने को बन्ध तत्त्व कहा गया है। जीव के पुद्गलों में प्रवेश से पहले 'भावास्रव' पैदा होता है, जो कि जीव का वास्तविक स्वरूप नष्ट कर देता है और जीव बन्धन में फँस जाता है।

मोक्ष :— जीव का पुद्गल से मुक्त हो जाना ही 'मोक्ष' है। यह मोक्ष दो प्रकार का है— भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष। भावमोक्ष ही जीवमुक्ति है। यह वास्तविक मोक्ष से पहले की अवस्था है। इसमें चारों घातीय कर्मो का नाश हो जाता है। इसके बाद ही अघातीय कर्मों का नाश होने पर द्रव्य—मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है। जैनियों के अनुसार मोक्ष प्राप्त करने के लिए बारह अनुप्रेक्षाओं से युक्त रहना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं— अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभत्व तथा धर्मानुप्रेक्षा।

जैनों की ज्ञानमीमांसा तत्त्वमीमांसा के समान ही स्वतन्त्र सत्ता रखती है। ज्ञानमीमांसा के प्रामाणिक स्रोत प्रमाणों की संख्या जैन दर्शन में तीन है— प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द। जैन दार्शनिक 'स्याद्वाद' अर्थात् 'सप्तभंगीनय' का प्रतिपादन करते हैं—

'नयनामके तिष्ठानां प्रवृत्तेः श्रुतवर्त्मनि।'

सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वाद श्रुतमुच्यते।।' न्यायावतार, 30

इसके अनुसार हमारा ज्ञान पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता। ज्ञान सदैव आपेक्षित सत्य ही होता है।

(5.3.2) बौद्ध दर्शन :–

बौद्ध दर्शन अपने प्रारम्भिक काल में जैन दर्शन की ही भाँति आचारशास्त्र के रूप में ही था। बाद में बुद्ध के उपदेशों के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने इसे आध्यात्मिक रूप देकर एक सशक्त दार्शनिकशास्त्र बनाया। बुद्ध द्वारा सर्वप्रथम सारनाथ में दिये गये उपदेशों में से चार आर्यसत्य इस प्रकार हैं :– **'दुःखसमुदायनिरोधमार्गाश्चत्वारआर्यबुद्धस्याभिमतानि तत्त्वानि।'** अर्थात् –

1. दुःख
2. दुःखसमुदाय
3. दुःखनिरोध
4. दुःखनिरोधमार्ग

बुद्धाभिमत इन चारों तत्त्वों में से **2.** दुःखसमुदाय के अन्तर्गत द्वादशनिदान (जरामरण, जाति, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार तथा अविद्या) तथा **4.** दुःखनिरोध के उपायों में अष्टांगमार्ग (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीव, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि) का विशेष महत्व है। इसके अतिरिक्त पंचशील (अहिंसा, अस्तेय, सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह) तथा द्वादश आयतन (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि), जिनसे सम्यक् कर्म करना चाहिए– भी आचार की दृष्टि से महनीय हैं। वस्तुतः चार आर्य सत्यों का विशद विवेचन ही बौद्ध दर्शन है।

बौद्ध दर्शन का प्रारम्भिक श्रेणी विभाग सत्ता के महत्त्वपूर्ण प्रश्न को लेकर किया गया, जो कि चार प्रस्थान के रूप में इस प्रकार जाना जाता है–

'मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगत्,
योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तासां विवर्तोऽखिलः।
अर्थोऽस्ति क्षणिकस्त्वसावनुमितो बुद्‌धयेति सौत्रान्तिकः,
प्रत्यक्षं क्षणभंगुरं च सकलं वैभाषिको भाषते।।'

1. **वैभाषिक सम्प्रदाय (बाह्यार्थ प्रत्यक्षवाद) :–** ये अर्थ को ज्ञान से युक्त अर्थात् प्रत्यक्षगम्य मानते हैं।
2. **सौत्रान्तिक सम्प्रदाय (बाह्यार्थानुमेयवाद) :–** ये बाह्यार्थ को अनुमेय मानते हैं। यद्यपि बाह्यजगत की सत्ता दोनों स्वीकार करते हैं, किन्तु दृष्टि के भेद से एक के लिए चित्त निरपेक्ष तथा दूसरे के लिए चित्त सापेक्ष अर्थात् अनुमेय सत्ता है। सौत्रान्तिक मत में सत्ता की स्थिति बाह्य से अन्तर्मुखी है।
3. **योगाचार सम्प्रदाय (विज्ञानवाद) :–** इनके अनुसार बुद्धि ही आकार के साथ है अर्थात् बुद्धि में ही बाह्यार्थ चले आते हैं। चित्त अर्थात् आलयविज्ञान में अनन्त विज्ञानों का उदय होता रहता है। क्षणभंगिनी चित्त सन्तति की सत्ता से सभी वस्तुओं का ज्ञान होता है। वस्तुतः ये बाह्य सत्ता का सर्वथा निराकरण करते हैं। इनके यहाँ माध्यमिक मत के समान सत्ता दो प्रकार की मानी गई है– **अ)** पारमार्थिक **ब)** व्यावहारिक। व्यावहारिक में पुनश्च परिकल्पित और परतन्त्र दो रूप ग्राह्य हैं।

यहाँ चित्त की ही प्रवृत्ति तथा निवृत्ति (निरोध, मुक्ति) होती है। सभी वस्तुऐं चित्त का ही विकल्प है। इसे ही आलयविज्ञान कहते हैं। यह आलयविज्ञान क्षणिक विज्ञानों की सन्तति मात्र है।

4. **माध्यमिक सम्प्रदाय (शून्यवाद) :–** यहाँ बाह्य एवम् अन्तः दोनों सत्ताओं का शून्य में विलयन हुआ है, जो कि अनिर्वचनीय है। ये केवल ज्ञान को ही अपने में स्थित मानते हैं और दो प्रकार का सत्य स्वीकार करते हैं–

   अ) सांवृत्तिक सत्य :– अविद्याजनित व्यावहारिक सत्ता।

   ब) पारमार्थिक सत्य :– प्रज्ञाजनित सत्य

बौद्धों के इन चारों सम्प्रदायों में से प्रथम दो का सम्बन्ध हीनयान से तथा अन्तिम दोनों का सम्बन्ध महायान से है। हीनयानी सम्प्रदाय यथार्थवादी तथा सर्वास्तिवादी है, जबकि महायानी सम्प्रदायों में से योगाचारी विचार को ही परम तत्त्व तथा परम रूप में स्वीकार करते हैं। माध्यमिक दर्शन एक निषेधात्मक एवं विवेचनात्मक पद्धति है। यही कारण है कि माध्यमिक शून्यवाद को 'सर्ववैनाशिकवाद के नाम से भी जाना जाता है। हीनयान तथा महायान की अन्यान्य अनेक शाखाएँ है, जो कि प्रख्यात नहीं हैं।

क्षणिकवाद :– बौद्धों के अनुसार वस्तु का निरन्तर परिवर्तन होता रहता है और कोई भी पदार्थ एक क्षण से अधिक स्थायी नहीं रहता है। कोई भी मनुष्य किसी भी दो क्षणों में एक सा नहीं रह सकता, इसीलिए आत्मा भी क्षणिक है और यह सिद्धान्त क्षणिकवाद। इसके लिए बौद्ध मतानुयायी प्रायः दीपशिखा की उपमा देते हैं। जब तक दीपक जलता है, तब तक उसकी लौ एक ही शिखा प्रतीत होती है, जबकि यह शिखा अनेकों शिखाओं की एक श्रृंखला है। एक बूँद से उत्पन्न शिखा दूसरी बूंद से उत्पन्न शिखा से भिन्न है; किन्तु शिखाओं के निरन्तर प्रवाह से एकता का भान होता है। इसी प्रकार सांसारिक पदार्थ क्षणिक है, किन्तु उनमें एकता की प्रतीति होती है। इस प्रकार यह सिद्धान्त 'नित्यवाद' और 'अभाववाद' के बीच का मध्यम मार्ग है।

प्रतीत्यसमुत्पाद :–'प्रतीत्यसमुत्पाद' से तात्पर्य एक वस्तु के प्राप्त होने पर दूसरी वस्तु की उत्पत्ति अथवा एक कारण के आधार पर एक कार्य की उत्पत्ति से है। प्रतीत्यसमुत्पाद सापेक्ष भी है और निरपेक्ष भी। सापेक्ष दृष्टि से वह संसार है और निरपेक्ष दृष्टि से निर्वाण। यह क्षणिकवाद की भाँति शाश्वतवाद और उच्छेदवाद के मध्य का मार्ग है; इसीलिए इसे मध्यममार्ग कहा जाता है और इसको मानने वाले माध्यमिक।

(5.3.3) चार्वाक दर्शन :–

प्रारम्भिक चार्वाक दर्शन लोकायत के नाम से जाना जाता था। लोकायत (लोक+आयत) से तात्पर्य लोक में व्याप्त अथवा विश्वव्यापकता से है। यही लोकायत आगे चलकर चार्वाक कहलाए। इसके प्रवर्तक बृहस्पति के शिष्य चार्वाक को माना जाता है। अन्य कुछ लोग चार्वाक को 'चारुवाक्' अर्थात् 'सुन्दर वाणी'अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। अन्य कुछ चार्वाक शब्द 'चर्व' धातु से निष्पन्न होने के कारण चर्वण करने तथा खाने, पीने, मौज करने का उपदेश करने के कारण इन्हें चार्वाक कहते हैं। इस दर्शन

का तीसरा नाम 'बार्हस्पत्य' दर्शन भी है, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि बृहस्पति ने राक्षसों के नाश के लिए इस परम अधार्मिक वृत्त का उपदेश किया था। कुछ भी हो, यह दर्शन अत्यन्त प्राचीन है और बौद्धमत के पूर्व भी पाया जाता है।

'प्रबोध चन्द्रोदय' नामक दार्शनिक नाटक में लोकायत के सम्बन्ध में एक पात्र कहता है कि 'लोकायत' ही एक शाश्वत शास्त्र है। इसमें प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। तत्त्व चार प्रकार के हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। धन और भोग ही मानव जीवन के लक्ष्य हैं। भौतिक तत्त्व चिन्तन कर सकते हैं। इनके अनुसार परलोक नाम की कोई वस्तु नहीं है। मृत्यु ही मुक्ति है। इसी लोक की सत्ता मानने के कारण ही ये लोकायत कहलाए। चार्वाकों में भी कुछ धूर्त चार्वाक और कुछ सुशिक्षित चार्वाकों के भेद से दो वर्ग में पाये जाते हैं, जो अति स्थूल से सूक्ष्म चिन्तन की दिशा का संकेत करते हैं। यद्यपि इस मत का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता है; फिर भी 'बृहस्पति सूत्र' ग्रन्थ के आधार पर चार्वाक दर्शन को कुछ इस प्रकार देखा जा सकता है—

1. पृथ्वी जल, तेज और वायु ये ही चार तत्त्व हैं—'**पृथिव्यापस्तेजो वायुरिति तत्त्वानि।'**
2. इन्ही भूतों के संघटन से शरीर, इन्द्रिय तथा चैतन्य की उत्पत्ति होती है। यथा—अन्न के संघटन से शक्ति उत्पन्न होती है।
3. आत्मा चैतन्य युक्त यही स्थूल शरीर है।
4. जीव जल के बुलबुले के समान है।
5. परलोक की कोई सत्ता नहीं।
6. मृत्यु ही मोक्ष है।
7. प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है।
8. अर्थ और काम मात्र दो ही पुरुषार्थ हैं।
9. वार्ता और दण्डनीति मात्र ये दो ही विद्याएँ हैं अर्थात् राजनीति ही एकमात्र विद्या है, जिसमें कृषि विज्ञान समाहित है।
10. तीनों वेद बुद्धि और पुरुषार्थ से रहित लोगों की जीविका के साधन हैं।

इस प्रकार चार्वाक धर्म को एक प्रकार का भ्रम और सुख को ही सत्य मानकर इच्छाओं की तृप्ति के लिए भौतिक वस्तुओं का भोग ही जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं। भौतिक सुखों को छोड़कर तपस्या करना व्यर्थ है। शारीरिक सुख एवं स्वास्थ्य लाभ हेतु यदि ऋण करके भी घृतपान करना पड़े, तो निःसंकोच करना चाहिए, क्योंकि मृत्यु ही जीवन का अन्त है और पुर्नजन्म कोरी कल्पना है, सत्य नहीं हैं। अतः—

'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः।।'

चार्वाक कर्मकाण्ड का घोर विरोध करते हैं। उनके अनुसार बलि देने से यदि पशु स्वर्ग जाता है, तो लोग अपने बाप या दादा की बलि क्यों नहीं चढ़ाते, ताकि वे सीधे स्वर्ग जा सकें। इसी प्रकार

पिण्डदान के लिए भी उनका कहना है कि यदि पूर्वजों को यहीं से तृप्ति मिलती है, तो दूर देश बैठे अपने सगे सम्बन्धी की उदरपूर्ति हम क्यों नहीं कर देते। चार्वाक इस प्रकार के अनेक रूढ़िगत विचारों का अपने प्रबल तर्कों से खण्डन करते हैं।

चार्वाकों का अत्यन्त भौतिकवादी होना, केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण मानना, कर्तव्यों का निषेध करना तथा आत्मा की सत्ता का निषेध करते हुए अनीश्वरवाद का पोषक होना आदि कुछ ऐसे विचारों का प्रतिपादन करना है, जो समाज में स्वार्थपरायणता को जन्म देते हैं, और स्वयं चार्वाकों को कटु आलोचना का भागी बनाते हैं। उनके अत्यधिक भोगवादी दृष्टिकोण से धर्म का लोप होता है। अतिशीघ्र सुखवाद स्वार्थपूर्ण बनाता है। केवल प्रत्यक्ष मानकर तो वे अपने पिता को भी नहीं जान सकते, क्योंकि पिता को भी जानने के लिए शब्द प्रमाण मानना पड़ेगा। जीवन में अनुमान की आवश्यकता प्रत्यक्ष से कम नहीं है। बिना अनुमान के जीवन दूभर हो जायेगा। आत्मा की सत्ता तथा ईश्वरवाद का खण्डन करके चार्वाक इस वैचित्र्यपूर्ण सृष्टि का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत नहीं कर सके। कर्तव्यों से मुँह मोड़कर केवल सुख भोग ने उन्हें धर्म से च्युत करके स्वार्थी बना दिया, जो सामाजिक विकृति को जन्म देता है। हाँ, इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि चार्वाक दार्शनिक आँख मूँदकर किसी को भी सत्य नहीं मान लेते और इस प्रकार वे सच्चे अर्थों में विश्लेषणात्मक पद्धति के जन्मदाता हैं।

(5.4) सारांश :–

जैन, बौद्ध एवं चार्वाक दर्शन की सार रूप में कुछ इस प्रकार देखा जा सकता है–

(5.4.1) जैन दर्शन :–

जैन दार्शनिक बौद्धों की भाँति वेदों की प्रामाणिकता का निराकरण करने से नास्तिक हैं। इतना ही नहीं, वे ईश्वर की सत्ता भी नहीं स्वीकार करते। यद्यपि ईश्वरत्व का अपलाप वे नहीं कर पाते हैं। अपने तीर्थंकरों को ईश्वर का रूप देकर लोक में आचार की स्थापना के लिए ईश्वरत्व की कल्पना पर ही बल देते हैं।, हाँ, ईश्वरत्व की पदवी को ग्रहण करने वाली किसी अतीन्द्रिय, विश्व से परे सत्ता को वे स्वीकार नहीं करते।

आत्मा के सम्बन्ध में जैन दार्शनिक बहुत्ववाद के पोषक हैं तथा साथ में ही आत्मा और जीव में कोई अन्तर नहीं करते हैं। आत्मा के अस्तित्त्व के प्रतिपादनार्थ वे चार्वाकों के अनात्मवाद का प्रबल तर्कों से खण्डन भी करते हैं। जैनों के अनुसार जड़तत्त्व उपादान मात्र है और निमित्तकारण आत्मा के बिना चैतन्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

जैन दर्शन में जीव का पुद्गल से आक्रान्त हो जाना ही बन्धन तथा पुद्गल से मुक्त हो जाना ही मोक्ष है। बन्धन का मूल कारण दूषित मनोभाव हैं। यहाँ बन्धन तथा मोक्ष दोनों के ही दो–दो भेद हैं। भावाबन्धन तथा द्रव्याबन्धन और भावमोक्ष तथा द्रव्यमोक्ष। संवर और निर्जरा मोक्ष के साधन हैं। आस्रव तथा बन्धन को जो रोकता है, वही 'संवर तत्त्व' है। यह संवर भी दो प्रकार का है–भाव संवर और द्रव्य संवर। जीव के राग–द्वेष आदि विकारों का निरोध 'भाव संवर' है तथा इसके बाद कर्म पुद्गलों का प्रवेश रुकना 'द्रव्यसंवर' कहलाता है। कर्म प्रवेश रोकने के लिए जैन पाँच समितियों ईर्या, भाषा, एषणा,

आदाननिक्षेपणा और प्रतिस्थापना उपाय स्वरूप बतलाते हैं। समिति में सत्क्रिया का प्रवर्तन मुख्य है। ठीक इसी प्रकार गुप्ति द्वारा असत् क्रिया का निरोध किया जाता है। ये गुप्तियाँ तीन हैं–कायगुप्ति, वाग् गुप्ति और मनोगुप्ति।

इसके अतिरिक्त कर्म पुद्गलों को रोकने के लिए पंच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्यचर्य और अपरिग्रह), दस धर्म (क्षमा, मृदुता, सरलता, शोच, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्यचर्य और उदासीनता), बारह अनुप्रेक्षाएँ (अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभत्व और धर्मानुप्रेक्षा) बाईस परीषह तथा पाँच चरित्र (सामयिक चरित्र, दोषस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात) का पालन अत्यावश्यक है।

बन्धन के बीज कर्म पुद्गलों की नाश–प्रक्रिया 'निर्जरा' कहलाती है। ये ऐसे पुद्गल होते हैं, जो आत्मा में पहले से संलिप्त होते हैं। उपर्युक्त 62 प्रकार के उपायों से आत्मा में कर्म पुद्गलों का प्रवेश रोका जा सकता है; किन्तु मुक्ति के लिए पहले के कर्म पुद्गलों का नाश भी आवश्यक है, जिसके लिए 'निर्जरा' की आवश्यकता होती है। यह निर्जरा भी 'भावनिर्जरा' और 'द्रव्य निर्जरा' भेद से दो प्रकार की है। पुनश्च इनके अवान्तर भेद भी जैन दर्शन में विस्तार से बताए गए हैं। इस प्रकार यद्यपि संवर के द्वारा नवीन पुद्गलों का आश्रय निरूद्ध हो जाता है तथा निर्जरा के द्वारा पहले से उपस्थित कर्मों का नाश हो जाता है; किन्तु मोक्ष का मार्ग 'त्रिरत्न' अत्यावश्यक हैं। ये तीन रत्न हैं– सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र। संक्षेप में यही जैनियों की तत्त्वमीमांसा है।

(5.4.2) बौद्ध दर्शन :–

बौद्धमतानुयायी द्वादश आयतनों की पूजा को मोक्ष दायक मानते हैं। ये द्वादश आयतन–पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वक् चक्षु, जिह्वा, घ्राण) पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ मन और बुद्धि हैं। मनुष्य को इनसे सम्यक् कर्म करना चाहिए। श्रीमन्माधवाचार्य प्रणीत 'सर्वदर्शनसंग्रह' के अन्तर्गत 'विवेक विलास' में वर्णित बौद्धमत का सार इस प्रकार है–

1. बौद्धों के देवता सुगत (बुद्ध) हैं।

2. संसार क्षणभंगुर है।

3. चार तत्त्व आर्यसत्यों के नाम से जाने जाते हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं– **1.** दुःख **2**. दुःख समुदाय **3** निरोध **4.** मार्ग। दुःख से तात्पर्य सांसारिक प्राणी के पाँच स्कन्धों (विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप) से है। द्वादश आयतनों के द्वारा रागादि का समूह मनुष्यों के हृदय में उत्पन्न होता है, जो कि आत्मा के अपने स्वभाव के नाम से जाना जाता है, वही समुदाय है। सभी संस्कार क्षणिक हैं, अतः जो स्थिर विचार (वासना) है, वही मार्ग है और वही मोक्ष है।

4. बौद्धों को केवल दो ही प्रमाण मान्य हैं– प्रत्यक्ष और अनुमान।

5. बौद्धों के चार प्रस्थान (सम्प्रदाय) विख्यात हैं, जो वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक के नाम से जाने जाते हैं।

6. चारों प्रकार के बौद्धों के लिए मुक्ति, रागादि ज्ञान की परम्परा रूपी वासना के नष्ट हो जाने से होती है।
7. चारों प्रस्थान हीनयान और महायान सम्प्रदाय के रूप में दो भागों में बँटे हैं, जिनमें से हीनयान (वैभाषिक, सौत्रान्तिक) अपने ग्रन्थों में धार्मिक उपदेश, निर्वाण, काल तथा कर्मवाद सम्बन्धी उपदेशों को कम स्थान देता है, जबकि महायान (योगाचार, माध्यमिक) इनकी अपने ग्रन्थों में विशद विवेचना करता है।
8. हीनयानियों का मुख्य लक्ष्य स्वयं का निर्वाण है; जबकि महायान के अनुयायी समस्त प्राणियों की मुक्ति के लिए प्रयत्नशील हैं।
9. हीनयानियों के ग्रन्थ पालि भाषा में हैं, जबकि महायानियों के ग्रन्थ संस्कृत भाषा में प्राप्त होते हैं।
10. हीनयानी अनीश्वरवादी हैं, जबकि महायान सम्प्रदाय भगवान बुद्ध में ईश्वर की कल्पना करता है।
11. हीनयानी आचरण की पवित्रता पर बल देता है और महायानी उसकी उपयोगिता पर।

(5.4.3) चार्वाक दर्शन :–

आचार्य बृहस्पति तथा विष्णु पुराण के अनुसार चार्वाक मत का सार संक्षेप में कुछ इस प्रकार देखा जा सकता है–

1. चार्वाक मतानुयायियों को स्वर्ग, अपवर्ग (मोक्ष) तथा परलोक में रहने वाली आत्मा जैसी कोई कल्पना मान्य नहीं है।
2. इसीलिए वर्णाश्रम आदि की क्रियाएँ भी फलवती नहीं है।
3. वेदत्रयी बुद्धि और पुरुषार्थ से रहित लोगों की आजीविका के साधन हैं।
4. यज्ञीय बलि–वेदी पर मारे गए पशु को यदि स्वर्ग प्राप्ति होती है, तो यजमान अपने पिता अथवा पितामह की बलि क्यों नहीं देते?
5. मृत व्यक्तियों को यदि श्राद्ध से तृप्ति होती है, तो बुझे दीपक की शिखा को तेल अवश्य बढ़ा देगा।
6. यदि किसी अन्य पुरुष के भोजन करने से भी किसी पुरुष की तृप्ति हो सकती है, तो विदेश यात्रा के समय खाद्य पदार्थ ले जाने की क्या आवश्यकता? पुत्रगण घर पर ही श्राद्ध कर सकते हैं।
7. इसलिए जब तक जियो, सुख से जियो। उधार (ऋण) लेकर चाहे घी पियो। भस्मीभूत हुए शरीर का ऋण– शोध के लिए पुनः आना सम्भव नहीं है।
8. यदि आत्मा शरीर से भिन्न है और शरीर त्याग के बाद दूसरे लोक में जाता है, तो बन्धुजनों के वियोग से व्याकुल होकर पुनः लौट क्यों नहीं आता?
9. मृतक के सम्पूर्ण मरणोत्तर कार्य ब्राह्मणों के बनाए जीविका के साधनमात्र हैं।
10. वेद के रचयिता भाँड़, धूर्त और राक्षस हैं।
11. यज्ञीय कर्म द्वारा देवत्व प्राप्त इन्द्र को यदि शमी आदि काष्ठ–भोजन ही प्राप्त होता है, तो हरे–हरे तिनके व पत्ते खाने वाला पशु उससे कहीं अधिक अच्छा है।
12. चार्वाक पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के दो पुरुषार्थों को ही महत्त्व देता है।

13. चार्वाक मतानुयायी केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानते हैं।

14. अनुमान से सम्भावना की जा सकती है, निश्चय नहीं। अतः निश्चित अर्थ की प्राप्ति केवल प्रत्यक्ष से ही हो सकती है।

15. चार्वाकों के अनुसार संसार चार तत्त्वों (पृथ्वी, जल, तेज और वायु) के संयोग से उत्पन्न हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चार्वाक प्रत्येक वस्तु को तर्क की कसौटी पर कसना चाहते हैं। इसीलिए लोकायत मत को मानने वाले शुद्ध बुद्धिवादी कहे गए। नीरस तर्कों द्वारा अपने पक्ष की पुष्टि तथा दूसरे के पक्ष का खण्डन 'वितण्डा' कहलाता है। इनका मत भी 'वितण्डावाद' कहलाया और इसको मानने वाले लोकायत वितण्डावादी। बुद्धघोष ने तो 'लोकायत' शब्द का अर्थ 'वितण्डसत्य' माना है।

(5.5) सन्दर्भित पुस्तकें:—

1. सर्वदर्शन संग्रह — प्रो0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
2. भारतीय दर्शन — बलदेव उपाध्याय
3. भारतीय दर्शन — उमेश मिश्र
4. भारतीय दर्शन — डॉ0 नन्दकिशोर देवराज
5. भारतीय दर्शन — विक्रमादित्य सिंह
6. भारतीय दर्शन —वाचस्पति गैरोला
7. भारतीय दर्शन की रूपरेखा — हिरियन्ना

(5.6) बोध प्रश्न :—

(5.6.1) बोध प्रश्न (दीर्घ उत्तरीय)

1. प्रश्न :— जैन दर्शन के स्याद्वाद के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

उत्तर :— 'स्यात्' शब्द सापेक्षता और अनेकान्तता का द्योतक है। यह अनिश्चय को व्यक्त करता है। जैन मतानुयायी यह मानते हैं कि किसी भी वस्तु को देखने के अनेकों दृष्टिकोण हो सकते हैं, जो परस्पर विरोधी होते हुए भी अपने—अपने प्रसंगो में सत्य हो सकते हैं। इसीलिए जैन दार्शनिक इस बात का आग्रह करते हैं कि प्रत्येक नय के आरम्भ में 'स्यात्' शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए। 'स्यात्' के प्रयोग से इस बात का भ्रम निवृत्त हो जाता है कि कोई वस्तु या विचार नित्य एवं निरपेक्ष है और यह दृढ़ निश्चय हो जाता है कि किसी भी वस्तु का अस्तित्त्व काल विशेष, स्थान विशेष एवं गुण विशेष पर आधारित है। इस प्रकार प्रत्येक परामर्श की सत्यता उस स्थिति विशेष पर आधारित होती है, जिसमें उसकी कल्पना की गई है। यही स्याद्वाद है, जो यह प्रतिपादन करता है कि हमारा ज्ञान पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता। वह पदार्थों की अपेक्षा से होता है और इसीलिए हमारा ज्ञान आपेक्षित सत्य है।

स्याद्वाद वस्तुतः पदार्थों को जानने की एक दृष्टिमात्र है। यह स्वयं अन्तिम सत्य नहीं है। हाँ, यह अन्तिम सत्य तक पहुँचाने में सहायक अवश्य है। इसीलिए जैन दार्शनिक स्याद्वाद को व्यावहारिक सत्य मानते हैं और यही उनके दर्शन का वैशिष्ट्य है। अनन्त धर्मों वाली प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में अनेकों दृष्टिकोण हो सकते हैं, जिनको जैन दार्शनिकों ने सात प्रकार की सम्भावनाओं के अन्तर्गत

समाहित करने का प्रयास किया है। उनकी ये सप्त सम्भावनाएँ 'सप्तभंगीनय' के नाम से जानी जाती हैं। जैनों के न्यायशास्त्र में इस सुप्रसिद्ध 'सप्तभंगीनय' अथवा 'अनेकान्तवाद' अथवा 'स्याद्वाद' की प्रतिष्ठा इस प्रकार है–

'अत्र सर्वत्र सप्त भङ्गिनयाख्यं न्यायमवतारयन्ति जैनाः।

स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः इति।'

1. **स्यादस्ति (स्यात् अस्ति द्रव्यम्)** :– किसी एक दृष्टि से वस्तु की सत्ता हो सकती है। यथा– घट रूप में एक विशेष देश एवं काल में घट के अस्तित्व की सम्भावना है, किन्तु पट रूप में तो उसके अभाव की ही उपलब्धि होगी। अतः इस भंग में द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता तथा पर्यायार्थिक नय की गौणता होती है।
2. **स्यान्नास्ति (स्यात् नास्ति द्रव्यम्) :–** उसी वस्तु की किसी दूसरी दृष्टि से उसी काल में सत्ता नहीं भी हो सकती है। यथा–घट की सत्ता घट की दृष्टि से है, किन्तु पट की दृष्टि से उसकी सत्ता का अभाव है। इस भंग में पर्यायार्थिक नय की प्रमुखता तथा द्रव्यार्थिक नय की गौणता होती है।
3. **स्यादस्ति च नास्ति च (स्यात् अस्ति च नास्ति च द्रव्यम्) :–** तृतीय दृष्टि से उसी वस्तु की सत्ता हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है। यथा–घट किसी देश एवं काल में एक विशेष रूप में हो सकता है; किन्तु पट रूप में नहीं। एक ही वस्तु में अस्तित्त्व एवं अभाव विषयक ये दोनों परामर्श असम्भव नहीं है। अतः इस भंग (रीति, भंगिमा) में द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक दोनों नयों की प्रधानता है।
4. **स्यादवक्तव्यः (स्यात अवक्तव्यं द्रव्यम्):–** चौथी दृष्टि से वही वस्तु अवक्तव्य है; क्योंकि एक ही समय में उसकी सत्ता का अस्तित्त्व और अदर्शन दोनों कहने से उसके स्वरूप का निर्वचन ठीक–ठीक नहीं हो सकता।
5. **स्यादस्ति चावक्तव्यः (स्यात् अस्ति च अवक्तव्यं च द्रव्यम्) :–** पाँचवी दृष्टि से वही वस्तु एक ही समय में हो सकती है और अवक्तव्य भी रह सकती है।
6. **स्यान्नास्ति चावक्तव्यः (स्यात् नास्ति च अवक्तव्यं च द्रव्यम्) :–** छठी दृष्टि से किसी वस्तु का एक समय में अभाव भी हो सकता है और वह अवक्तव्य भी हो सकती है।
7. **स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः (स्यात् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च द्रव्यम्) :–** यह सम्भावना तभी होती है, जब एक ही वस्तु का एक दृष्टि से अस्तित्त्व हो, दूसरी दृष्टि से अभाव हो तथा तीसरी दृष्टि से निर्वचन की असम्भावना अर्थात् अवक्तव्यता हो।

ज्ञान सर्वतोभावेन सत्य नहीं है और न ही स्वतन्त्र। सभी ज्ञान अपने दृष्टिकोण अथवा पहलू के अधीन हैं। अतएव निर्णय के पूर्व सापेक्षतासूचक कोई शब्द लगाना परमावश्यक है। जैन न्यायशास्त्र के ये ही सात परामर्श वाक्य सप्तभङ्गी न्याय (नय) के नाम से जाने जाते हैं। भङ्ग से यहाँ तात्पर्य

समुच्चय अथवा रीति (भंगिमा) से है। सांख्य आदि सात प्रकार के एकान्तवाद प्रतिपादन का भंग (मेल) करके इस अनेकान्तवाद की स्थापना हुई है।

2. प्रश्न :– बौद्ध दर्शन के क्षणिकवाद के सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

उत्तर :– महात्मा बुद्ध के उपदेशों का सार यह है कि संसार अनित्य है, नाशवान् है, परिवर्तनशील है। परिवर्तन ही विश्वसत्ता का स्वाभाविक गुण है। संसार की कोई भी वस्तु पूर्णरूपेण नित्य अथवा पूर्णरूपेण अनित्य नहीं होती है। वास्तविकता यह है कि वस्तु का निरन्तर परिवर्तन होता रहता है और कोई भी पदार्थ एक क्षण से अधिक स्थायी नहीं रहता है। एक वस्तु से दूसरी का सृजन होता है और उत्पत्तिक्षण में वह तीसरी को जन्म देकर नष्ट हो जाती है। वस्तुओं की उत्पत्ति एवं विनाश की यह कार्य–कारणबद्ध परम्परा निरन्तर चलती रहती है–यही संसार है। संसार की प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति किसी न किसी कारण से होती है और वह स्वतः किसी का कारण बनकर किसी कार्य को उत्पन्न करती है। अतः संसार के समस्त पदार्थ आदि और अन्त वाले हैं, स्वभाव से ही अनित्य हैं।

यह कार्य–कारण अथवा संसार की प्रक्रिया को समझाने के लिए बौद्धमतानुयायी दीपशिखा का उदाहरण देते हैं। जिस प्रकार दीपक जब तक जलता है, तब तक उसकी लौ एक ही दीपशिखा के रूप में प्रतीत होती है; जबकि वास्तव में यह शिखा अनेकों शिखाओं की एक श्रृंखला है। बौद्धों के अनुसार एक बूँद तेल के जलने से जो शिखा उत्पन्न होती है। वह दूसरी बूँद के जलने से उत्पन्न शिखा से सर्वथा भिन्न है। शिखाओं के निरन्तर प्रवाह के कारण उसमें एकता की प्रतीति होती है। इसी प्रकार समस्त सांसारिक पदार्थ क्षणिक होते हुए भी अज्ञानवश एकता की प्रतीति कराते हैं। पदार्थो के इसी क्षणिकत्व को स्वीकार करने से बौद्धों का यह सिद्धान्त 'क्षणिकवाद' कहलाता है और यह सिद्धान्त भी प्रतीत्यसमुत्पाद के समान 'नित्यवाद' और 'अभाववाद' के बीच का मध्यम मार्ग है।

क्षणिकवाद की पुष्टि के लिए बौद्धों का कहना है–

'यत्सत्तत्क्षणिकं यथा जलधरः सन्तश्च भावा अमी
सत्ता शक्तिरिहार्थकर्मणि मितेः सिद्धेषु सिद्धा न सा।
नाप्येकैव विधान्यथा परकृतेनापि क्रियादिर्भवेद्,
द्वेधापि क्षणभङ्गसड्ंगतिरतः साध्ये च विश्राम्यति।।'

अपने मत के समर्थन में वे अर्थ–क्रियाकारित्व का प्रबल तर्क प्रस्तुत करते हैं, जो कि किसी कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति पर आधारित है। जो वस्तु कार्य उत्पन्न कर सकती है, उसकी हीं सत्ता है, जो कार्य उत्पन्न नहीं कर सकती, उस वस्तु की कोई सत्ता नहीं है। सांसारिक पदार्थ क्षणिक हैं। कोई भी किसी भी दो क्षणों में एक समान नहीं हो सकता। इसीलिए आत्मा भी क्षणिक है।

आलोचनात्मक समीक्षा :– क्षणिकवाद की सबसे तीखी आलोचना शंकराचार्य जी ने प्रस्तुत की। उनके अनुसार **1**. आत्मा यदि क्षणिक होगी तो उसका ज्ञान असम्भव होगा। सतत् परिवर्तनशील वृत्ति को दूसरी वृत्ति का ज्ञान कैसे हो सकता है? परिवर्तित वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्ञाता का अपरिवर्तित होना अत्यन्त आवश्यक है, तभी वह भिन्न–भिन्न इन्द्रियों की सहायता से सूक्ष्म ज्ञान बिन्दुओं को

जोड़कर किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह कार्य आत्मा द्वारा ही सम्भव है, जिसे बौद्ध क्षणिक बतलाते हैं। **2**. कार्य–कारण का सम्बन्ध भी क्षणिकवाद के आधार पर नहीं जाना जा सकता। यदि कारण क्षणिक होगा तो कार्य की उत्पत्ति कैसे सम्भव होगी? कार्योत्पत्ति के लिए कारण की सतत् प्रयत्नशीलता आवश्यक है।

यद्यपि ज्ञान की दृष्टि से 'क्षणिकवाद' एक भ्रामक सिद्धान्त है; किन्तु मूलतः इस सिद्धान्त की सत्यता का अपलाप कथमपि नहीं किया जा सकता कि जगत् निरन्तर परिवर्तनशील है।

3. प्रश्न :–चार्वाक मत में केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण है तथा अनुमान अप्रामाणिक है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर :– प्रमाण से तात्पर्य 'प्रमा' की उपलब्धि के साधन से है, जिससे प्रमेय की सिद्धि अथवा उपलब्धि सम्भव होती है। चार्वाक मत में अपने प्रमेय की सिद्धि के लिए केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण कोटि में रखा गया है। उनकी दृष्टि में अन्य सभी प्रमाण अप्रामाणिक हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण :– इन्द्रिय और विषय के सम्पर्क से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है और इसी प्रमाण से ही समस्त प्रमेयों की सिद्धि होती है। सत्य ज्ञान अथवा यथार्थ अनुभव को प्रमा (ज्ञान) कहते हैं और जो प्रमा के रूप में सिद्ध किया जाने वाला विषय है, वहीं प्रमेय है। प्रमेय की सिद्धि प्रमाणों द्वारा होती है। इस प्रकार प्रमा के साधन स्वरूप वस्तु को प्रमाण कहते हैं–**'प्रमायाःकरणं प्रमाणम्।'**

चार्वाक मत में हम जगत में जिसका ज्ञान अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा करते हैं, वही सत् है, यथार्थ है। इसके अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या है। प्रत्यक्ष से परे सभी वस्तुएँ काल्पनिक हैं, सत् नहीं। यथा–ईश्वर का प्रत्यक्ष नहीं होता, वह कल्पना का विषय है। काल्पनिक वस्तुएँ वास्तविकता से दूर होती हैं। जिन वस्तुओं को हम देख या सुन न सकें, न छू सकें, न सूँघ सकें, न स्वाद ले सकें, उनका अस्तित्व किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया जा सकता। चार्वाक सुख तथा दुःख जैसी अनुभूतियों के लिए कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं करते, जबकि मनोवैज्ञानिक भी ऐसी अनुभूतियों को अन्तर प्रत्यक्ष के द्वारा स्वीकार करते हैं।

अनुमान की अप्रामाणिकता :–

चार्वाक मतानुयायियों का कहना है कि अनुमान द्वारा निश्चयात्मक ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती; क्योंकि अनुमान अज्ञात का ज्ञान है। अदृष्ट अज्ञात का ज्ञान संदेहास्पद ही होगा, निश्चयात्मक नहीं हो सकता। चूँकि अनुमान व्याप्ति ज्ञान पर आधारित है, इसलिए व्याप्ति ज्ञान के संदेह रहित होने पर ही निश्चयात्मक अनुमान हो सकता है। धूम और अग्नि की व्याप्ति ज्ञान का निश्चय होने पर ही धूम को देखकर अग्नि का अनुमान किया जा सकता है; किन्तु सभी प्रकार के धूम के साथ अग्नि की व्याप्ति सम्भव नहीं। यथा– जहाँ–जहाँ धूम है, वहाँ–वहाँ आग है, यह सम्भव है; किन्तु जहाँ–जहाँ आग है, वहाँ–वहाँ धूम है, यह आवश्यक नहीं। लोहे के गर्म गोले में आग है, किन्तु वहाँ धूम नहीं है। हेतु और साध्य का साहचर्य सम्बन्ध उपाधिरहित होता है और इस सम्बन्ध को व्याप्ति कहते हैं। व्याप्ति ज्ञान पर ही अनुमान की सत्यता निर्भर होती है। यथा–

1. पर्वत पर अग्नि है–प्रतिज्ञा।

2. क्योंकि पर्वत पर धुआँ है–हेतु।
3. जहाँ–जहाँ धुआँ होता है, वहाँ वहाँ अग्नि होती है–उदाहरण।
4. जैसे रसोई घर में– उपनय।
5. अतः पर्वत पर अग्नि है–निगमन।

इस अनुमान में उदाहरणगत व्याप्ति ही अनुमान की सत्यता का आधार है; किन्तु चार्वाक मतानुयायियों के अनुसार कुछ दृष्टान्तों के आधार पर सभी के लिए नियम बना देना उचित नहीं है। चार्वाक दार्शनिक समस्त घटनाओं के पूर्ण निरीक्षण के बाद ही किसी सामान्य और अनिवार्य नियम बनाने के पक्षधर हैं। अनुमान की अप्रामाणिकता को सिद्ध करने में चार्वाकों के कुछ खास तर्क हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. व्याप्ति की स्थापना प्रत्यक्ष द्वारा कठिन है, क्योंकि व्याप्ति के लिए निरूपाधिक साहचर्य को न हम बाह्य प्रत्यक्ष द्वारा जान सकते हैं और न अन्तर प्रत्यक्ष द्वारा।
2. व्याप्ति को अनुमान द्वारा भी नहीं सिद्ध किया जा सकता; क्योंकि अनुमान की ही सिद्धि हम व्याप्ति से करते हैं। अतः अन्योन्याश्रय दोष का प्रसंग आ जायेगा।
3. शब्द प्रमाण भी व्याप्ति नहीं स्थापित कर सकता; क्योंकि वह स्वतः अनुमान पर आधारित है और अनुमान व्याप्ति पर। अतः पुनः अन्योन्याश्रय दोष।
4. हेतु की व्यापकता का ज्ञान प्रत्यक्ष की सीमा से परे है और व्यापकता की सिद्धि बिना व्याप्ति सिद्ध नहीं हो सकती, फिर अनुमान कैसे होगा?
5. समानता के आधार पर भी व्याप्ति सम्भव नहीं; क्योंकि तुलना गुण–दोष पर आधारित होती है और यह सम्भव नहीं।
6. व्याप्ति उपाधिरहित होती है। सभी दृष्टान्तों की उपाधियों को जानना सम्भव नहीं।
7. लोकव्यवहार के लिए अनुमान अच्छा साधन है; किन्तु चार्वाक मत में लोकव्यवहार के लिए निश्चय की नहीं अपितु सम्भावना की अधिक आवश्यकता है। यथा–फैले हुए पानी को देखकर अनेक सम्भावनाएँ होती हैं, जो अनुमान से सिद्ध तो होती हैं, किन्तु निश्चय की प्राप्ति नहीं हो पाती। अनुमान सदैव सच्चे नहीं निकलते।
8. सांसारिक वैचित्र्य चार्वाक मत में कार्य–कारण के नियम के कारण नहीं, अपितु स्वभाववाद के कारण है, जिसमें कभी–कभी अनुमान सच्चे भी हो जाते हैं।

चार्वाक के अतिरिक्त सभी दर्शनों ने अनुमान प्रमाण को स्वीकार किया है। अनुमान के बिना तो प्रत्यक्ष प्रमाण की भी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होगी; क्योंकि प्रत्यक्ष सिद्धि के लिए तर्क की आवश्यकता होगी और वह तर्क अनुमान का सहायक है। स्वयं चार्वाक अनुमान के आधार पर ही अन्य मतों का खण्डन करते हैं। अतः चार्वाकों का अनुमान को अप्रामाणिक मानना दर्शन जगत् में निन्दा एवं आलोचना का ही विषय बना है।

(5.6.2) बोध प्रश्न (लघु उत्तरीय)

1. प्रश्न :– जैन दर्शन के अनुसार 'त्रिरत्न' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तरः– जैन दर्शन में मोक्ष का मार्ग 'त्रिरत्न' द्वारा प्रशस्त होता है। ये तीन रत्न इस प्रकार हैं–

क) सम्यक् दर्शन :– सम्यक् दर्शन से तात्पर्य यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा से है। श्रद्धा निरन्तर मनन करते रहने से गहरी होती जाती है। पूर्ण श्रद्धा पूर्णज्ञान होने पर ही होती है।

ख) सम्यक् ज्ञानः– उपदेशों का अंशतः ज्ञान सम्यक् दर्शन है; किन्तु सम्यक् ज्ञान में जीव और अजीव के मूल तत्त्वों का सविशेष ज्ञान होता है। यह दोषरहित एवं असन्दिग्ध होता है। कर्मों के पूर्ण विनाश के उपरान्त ही यह स्थिति प्राप्त होती है।

ग) सम्यक् चरित्र :– इससे जीव कर्मों से मुक्त हो जाता है। इसमें अहितकर कार्यों को छोड़कर हितकर कार्यों को करना होता है। यथा–

1. पंचमहाव्रत का पालन करना।

2. मन, वचन तथा धर्म में गुप्ति का अभ्यास करना।

3. भूख–प्यास, गर्मी–सर्दी के कष्टों को सहन करना।

4. समता, निर्मलता, लोभराहित्य एवं चारित्र्य के प्रति सजग रहना।

5. दस धर्मों (क्षमा, मृदुता, आर्जव (सरलता), सत्य, शौच, संयम, तप(शारीरिक, मानसिक दोनों) त्याग, अकिंचनता तथा ब्रह्मचर्य) का आचरण करना। आदि

2. प्रश्न :– बौद्धाभिमत 'अष्टांग मार्ग' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर :– भगवान बुद्ध ने चार आर्य सत्यों का उपदेश देते हुए दुःख निरोध के मार्ग बताते हुए 'अष्टांग मार्ग' का उपदेश दिया। उनका विश्वास था कि मनसा, वाचा, कर्मणा साधना के बिना दुःख निरोध सम्भव नहीं। अतः प्रत्येक साधक को इस अष्टांग मार्ग पर चलना अत्यावश्यक है–

1. सम्यक् दृष्टि अर्थात् आर्यसत्यों का भलीभाँति ज्ञान।

2. सम्यक् संकल्प अर्थात् राग–द्वेषादि सांसारिक विषयों के परित्याग के लिए दृढ़ निश्चय।

3. सम्यक् वाक् अर्थात् सत्यवचन की रक्षा तथा मिथ्या, अनुचित दुर्वचनों का परित्याग।

4. सम्यक् कर्मान्त अर्थात् हिंसा, परद्रव्य लोलुपता तथा वासनापूर्ति की इच्छा का परित्याग कर साधु कर्म करना।

5. सम्यक् आजीव अर्थात न्यायपूर्ण विशुद्ध आजीविका।

6. सम्यक् व्यायाम अर्थात् बुराइयों पर विजय प्राप्त करके सत्कर्म के लिए सतत् उद्यत रहना।

7. सम्यक् स्मृति अर्थात् लोभ, मोहादि कालुष्य निरोधपूर्वक चित्तशुद्धि।

8. सम्यक् समाधि अर्थात् चित्त की एकाग्रता।

इन आठों आचरणों का पालन करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और ज्ञान का उदय हो जाता है। भगवान बुद्ध ने इन्हीं मार्गों पर चलकर बुद्धत्व प्राप्त किया था।

3. प्रश्न :– आत्मा के सम्बन्ध में चार्वाक के विचार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

उत्तर :– दुःख निवृत्ति तथा आत्यन्तिक सुख प्राप्ति के लिए सभी जीव यथामति आत्मदर्शन के प्रति प्रयासरत हैं। चार्वाकों ने भी आत्मदर्शन का प्रयास किया और यह पाया कि आत्मा का स्वरूप कुछ इस प्रकार होना चाहिए–**1.** परतन्त्र न हो। **2.** सबसे प्रिय वस्तु हो। **3.** चैतन्य हो। **4.** कर्म करने वाला हो, आदि। अतः चार्वाक मत में 'आत्मा' प्रत्यक्षभूत भूतों के संघटन से बना कोई पदार्थ ही हो सकता है। उपर्युक्त शर्तों पर तो धन को ही आत्मा कहा जा सकता है; क्योंकि धन सम्पन्न ही स्वतन्त्र, महान, ज्ञानी तथा सभी कर्मों को करने में समर्थ है। अतः अति स्थूल दृष्टि से धन ही आत्मा है; किन्तु इनसे कुछ सूक्ष्म चिन्तन करने वालों के अनुसार धन जड़ है, चैतन्य नहीं और धन स्वयं कुछ कर भी नहीं सकता। अतः सबसे प्रिय पुत्र ही आत्मा है–**'आत्मा वै जायते पुत्रः'** कहा। आत्मा के विषय में सदानन्द जी ने भी वेदान्तसार में चार्वाकों के चार सम्प्रदायों का उल्लेख किया है–

1. स्थूल शरीर ही आत्मा है–**'स वा एष अन्नरसमयः पुरुषः'**। चार्वाक सूत्र भी यही कहता है–**'चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः'।**

2. इन्द्रियाँ ही आत्मा हैं– **'ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरं प्रेत्य ऊचुः'।**

3. प्राण ही आत्मा है– **'अन्योऽन्यतर आत्मा प्राणमयः।**

4. मन ही आत्मा है– **'अन्योऽन्यतर आत्मा मनोमयः।'**

इस प्रकार चार्वाक स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ते क्रम से धन ही आत्मा, पुत्र ही आत्मा, देहात्मवाद, इन्द्रियात्मवाद, प्राणात्मवाद और आत्ममनोवाद के पोषक हैं। यही भौतिकवाद है। इनका ज्ञानक्षेत्र भूतपर्यन्त ही सीमित है। अतः चार्वाक मतानुयायी पूरी तरह से आत्मा के सम्बन्ध में भौतिकवादी ही हैं।

(5.7) स्वपरख प्रश्न/अभ्यास

1. जीव के विषय में जैन दर्शन की क्या अवधारणा है ? इस दर्शन के अनुसार जीव को किस प्रकार मोक्ष प्राप्त हो सकता है ?

2. जैन दर्शन के अनेकान्तवाद की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3. जैनियों के आत्मा के सिद्धान्त का प्रतिपादन कीजिए।

4. बुद्ध के अनुसार चार आर्यसत्य कौन हैं ? स्पष्ट कीजिए ।

5. बौद्ध दर्शन के अनुसार 'निर्वाण' के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

6. संक्षेप में चार्वाक दर्शन का उल्लेख कीजिए।

7. चार्वाक– जड़वाद (भौतिकवाद) की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

8. चार्वाकों के नैतिक विचार प्रस्तुत कीजिए।

9. हीनयान तथा महायान सम्प्रदाय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर – हीनयान सम्प्रदाय :–हीनयान शब्द का प्रयोग थेरवादी सम्प्रदाय के लिए किया गया। इनके ग्रन्थों में धार्मिक, उपदेशात्मक, निर्वाण, काल एवं कर्मवाद सम्बन्धी उद्देश्यों को कम स्थान मिला। इनका लक्ष्य स्वयं के निर्वाण–प्राप्ति का ही रहा है, जिसे वह तीन जीवन में प्राप्त कर लेता है। इसीलिए कम समय के लिए कर्म करने तथा छोटा उद्देश्य स्वयं की मुक्ति का होने से ही इन्हें हीन कहा गया

है। हीनयान वस्तुओं की अनित्यता में विश्वास करता है। यह बौद्ध धर्म के प्राचीन रूप को मान्यता प्रदान करता है। हीनयानी अनीश्वरवादी हैं; किन्तु पवित्रता पर बल देते हैं। उनके ग्रन्थ पालि भाषा में त्रिपिटक (सुत्त पिटक, विनय पिटक तथा अभिधम्म पिटक) के रूप में है। यद्यपि हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी बहुत कम रहे; किन्तु इनका प्रचार–प्रसार बहुत अधिक हुआ।

हीनयान सम्प्रदाय के अन्तर्गत वैभाषिक और सौत्रान्तिक सम्प्रदाय प्रमुख हैं। हीनयान अनित्यता, दुःखता और अनात्मता को मानता है। इसके साधक का आदर्श आस्रव क्षय है। हीनयान पुद्‌गलशून्यता को मानता है और छः पारमिताएँ बतलाता है। इसमें ध्यानयोग का विशेष महत्त्व है। हीनयान में केवल निर्माण कायों (धर्मकाय, सम्भोगकाय, निर्माणकाय) का ही वर्णन है और अर्हत्त्व पद एक गौरवपूर्ण पद माना गया है। यह शील और समाधि प्रधान है। इस प्रकार हीनयान सम्प्रदाय महायान सम्प्रदाय के लिए एक ठोस आधार भूमि तैयार करता है, जो बुद्ध बचनों में समाहित है।

महायान सम्प्रदाय :– इसके अन्तर्गत योगाचार और माध्यमिक सम्प्रदाय आते हैं, जो बौद्ध धर्म के विकसित रूप हैं। महायान के प्रत्येक सिद्धान्तों के मूल बीज ही हीनयान (प्रारम्भिक बौद्ध धर्म) में मौलिक रूपों में दिखाई पड़ते हैं। माध्यमिकों का शून्यवाद प्रारम्भिक बौद्ध धर्म के त्रिलक्षण (अनित्य, दुःख और अनात्म) का ही विकसित रूप है। महायान की विश्वकल्याण की कल्पना के बीज भगवान बुद्ध के प्रथम उपदेश में प्राप्त हैं, जहाँ उन्होंने कहा है कि–

'चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय
लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं'।

–विनयपिटक 1/21

करुणा की भावना, बोधिसत्त्व (बोधि के लिए यत्नशील प्राणी) की कल्पना आदि भी पालि निकायों में बिखरी पड़ी हैं। महायान हीनयान की अनित्यता, दुःखता और अनात्मता को आगे जाकर शून्यता से जोड़ता है। महायान का आदर्श सम्पूर्ण संसार की मुक्ति है। इसीलिए वह धर्म शून्यता को पुद्‌गल शून्यता से अधिक महत्त्व देता है। इसके लिए यहाँ दस पारमिताओं का वर्णन है। महायान बोधिसत्वयान द्वारा महाकरुणा प्रधान है और असंख्य प्राणियों को बुद्धत्व लाभ कराना लक्ष्य रखता है। दस भूमियाँ (मुदिता, विमला, प्रमाकरी, अर्चिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुक्ति, दूरंगमा, अचला, साधुमती, धर्ममेधा) महायान की विशेष देन हैं। इसके अतिरिक्त दस बल, चार वैशारद्य, बत्तीस महापुरुष लक्षण, अस्सी अनुव्यंजन, अष्टादश आवेणिक धर्म आदि का महायान में विशद वर्णन है, जिनकी प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहने को कहा गया है।

महायान सम्प्रदाय में सम्यक् सम्बोधि चरम लक्ष्य है। यह आत्मार्थ के स्थान पर परार्थ की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। महायान में बुद्धों की पूजा का विशेष वर्णन है। यहाँ बुद्ध ज्ञान, सर्वज्ञता, सम्बोधि (तथता) के लिए सत्त्व प्रयत्नशील होता है। महायान का परमार्थ सत्य धर्म शून्यता है। यह करुणा और प्रज्ञा प्रधान है। महायान सूत्र 'वैपुल्य सूत्र' के नाम से जाने जाते हैं, जिनकी रचना एक प्रकार की संस्कृत में हुई और इनके रचयिता या संग्रहकर्त्ता सम्भवतः थेरवाद(स्थविरवाद) से अलग हुए

बौद्ध ही थे। इस प्रकार ये बौद्ध धर्म के परिवर्तित रूप को मान्यता प्रदान करते हैं। महायान में प्रज्ञापारमिता समस्त आभासों का अन्त है—

'यः अनुपलम्भः सर्वधर्मानां स प्रज्ञापारमिता इत्युच्यते।'

शून्यवाद और विज्ञानवाद दोनों सम्प्रदायों में कोई मौलिक भेद नहीं है, केवल सिद्धान्तों का ही थोड़ा भेद प्राप्त होता है। हीनयानियों के अनीश्वरवाद को ये महात्मा बुद्ध में ईश्वरत्व की कल्पना करते हुए पाये जाते हैं। महायान बुद्ध के उपदेशों की उपयोगिता पर अधिक बल देता है, इसीलिए वह स्वार्थ से आगे बढ़कर परार्थ की भावना से ओतप्रोत दिखलाई पड़ता है।

बहुविकल्पीय प्रश्नः—

1. जैन दर्शन में मान्य प्रमाणों की संख्या है—
अ) एक ब) दो स) तीन द) चार
उत्तर —स

2. अनेकान्तवाद का वर्णन प्राप्त होता है—
अ) चार्वाक दर्शनों में ब) जैन दर्शन में स) बौद्ध दर्शन में द) सभी में
उत्तर— ब

3. पुद्गल की कल्पना है—
अ) जैनियों की ब) चार्वाकों की स) बौद्धों की द) किसी की नहीं
उत्तर— अ

4. विज्ञानवाद का सम्बन्ध है—
अ) वेदान्तियों से ब) बौद्धों से स) जैनियों से द) चार्वाकों से
उत्तर — ब

5. चार 'आर्यसत्य' देन हैं—
अ) चार्वाकों की ब) जैनियों की स) बौद्धों की द) सबकी
उत्तर — स

6. बौद्धों को मान्य प्रमाण हैं—
अ) प्रत्यक्ष ब) अनुमान, शब्द स) शब्द द) प्रत्यक्ष, अनुमान
उत्तर — द

7. क्षणभंगवाद के पोषक हैं—
अ) बौद्ध ब) जैन स) चार्वाक द) कोई नहीं।
उत्तर — अ

8. बार्हस्पत्य दर्शन किसे कहते हैं—
अ) जैन दर्शन को ब) बौद्ध दर्शन को स) चार्वाक दर्शन को द) किसी को नहीं
उत्तर — स

9. केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानने वाला दर्शन है—
अ) चार्वाक ब) जैन स) बौद्ध द) सब
उत्तर — अ

10. सुखवाद को मान्यता दी है—
अ) बौद्ध दर्शन ने ब) जैन दर्शन ने स) चार्वाक दर्शन ने द) सभी ने
उत्तर — स